सुभ द्रोण गिरि मणि सिखर,
ऊपरे उदित ओषधि सौ गनौ।
बहु वायु वस वारिद बहोरहि,
अरुझ दामिनी दुति मनौ।
अति किंधौं रुचिर प्रताप,
पावक प्रगट सुरपुर को चलो।
अति किधौं सरित सुदेश मेरी,
करी दिवि खेलत भलो ॥39॥

शब्दार्थ—द्रोण गिरि = द्रोण नाम का पर्वत। गन्नौ = जानो। वारिद = बादल। बहोरहिं = वापस लौटा रही है। दामिनि-दुति = बिजली की चमक। किंधौं = अथवा। रुचिर = सुन्दर। सुरपुर = स्वर्गलोक। सरित सुदेश = सुन्दर नदी। करी = बनाई हुई। दिवि = आकाश। भलो = सुन्दर रीति से।

प्रसंग—महर्षि विश्वामित्र अपने शिष्यों से अयोध्या नगरी के ऊँचे-ऊँचे महलों पर फहराती हुई लाल पताकाओं का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—अयोध्या नगरी के ऊँचे-ऊँचे महलों पर फहराती हुई लाल पताकाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे सुन्दर द्रोणनामक पर्वत की दिव्य चोटी पर औषधियाँ चमक रही हों, अथवा पताकाओं से उलझी हुई बिजली की ज्योति को बादलों के वशीभूत हुआ जानकर वायु उन्हें वापस बादलों की ओर लौटा रही है; यह रघुवंशियों का सुन्दर प्रताप है जो लाल आग के रूप में प्रकट होकर स्वर्गलोक की ओर जा रही है; अथवा यह मेरी बनाई हुई सुन्दर नहीं कौशिकी गंगा है जो सुन्दर रीति से आकाश में, खेल रही है; अर्थात् इठलाती हुई बह रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, संदेह, सम्बन्धातिशयोक्ति।